आदिवासी अंचल का
सांस्कृतिक पर्व भगोरिया

आदिवासी अंचल में प्रति वर्ष मनाया जाने वाला भोंगर्या अर्थात भगोरिया पर्व जनजाति समाज का मुख्य त्योहार है। इसे आलीराजपुर, झाबुआ और धार जिले में आदिवासी बहुल क्षेत्र के समीपस्थ ग्रामों के निकटतम साप्ताहिक हाट या कहीं पर जहां हाट भी नहीं लगता है, वहां वर्ष में एक दिन मनाया जाता है। मांदल की थाप और बांसुरी की मदमाती धुन, जब महुआ के फूल की मादक खुशबू महकने लगती है, बौराए हुए आम की एक खास महक और ताड़ी का भरपूर सुरूर अपने यौवन पर आ जाता है और होली का सप्ताह करीब हो, तो समझ लो कि भगोरिया आ गया। होलिका दहन का दिन आखिरी भगोरिया पर्व और इसके 6 दिन पूर्व के यानी पूरे 7 दिन यह पर्व होता है।

अनिल तंवर
सेवानिवृत्त राजभाषा अधिकारी

आदिवासी समाज का विशेष हाट

कुछ लोग (गैर-आदिवासी मीडिया) द्वारा आदिवासियों को बदनाम करने के लिए भोंगर्या हाट को परिणय पर्व या वैलेंटाइन डे से संबोधित करते हैं, जो एक सोची-समझी साजिश के तहत पूरे आदिवासी समाज को बदनाम करने की कोशिश की जा रही हैं। इस पर्व में कभी भी पान खिलाकर और गुलाल लगाकर लड़की भगाने का जो मिथ्या प्रचार किया जाता रहा है। वह केवल सस्ती लोकप्रियता हासिल करने तथा आदिवासी संस्कृति को बदनाम करने की साजिश रही है। पूर्व में यहां, जो गिने-चुने फोटोग्राफर आते थे, उन्होंने अपनी छपास की भूख और प्रसिद्धि के कारण इस पर्व को गलत रूप में प्रचारित किया। आदिवासी समाज के युवक और युवतियां अब जागृत हो चुके हैं और उनका कहना है कि गैर आदिवासी मीडिया इस प्रकार का भ्रम फैलाना बंद करे। यह न तो कोई परिणय पर्व है और न ही कोई त्योहार है। यह सिर्फ होली पूर्व एक विशेष हाट हैं, जिसमें आदिवासी बच्चों से लेकर बुजुर्ग उत्साह और जोश के साथ भोंगर्या हाट में जाकर ढोल-मांदल, थाली,बांसुरी की मिश्रित मधुर ध्वनि के साथ नाच-गाना कर एन्जॉय करते हैं और होली पूजन के लिए आवश्यक सामग्री की खरीदारी करते हैं।

सात दिनों तक चलेगा मेला

अंचल का प्रमुख आदिवासी लोकपर्व भगोरिया इस वर्ष 24 फरवरी से आरंभ होकर 2 मार्च तक चलेगा। वर्ष में एक बार मनाए जाने वाले इस पर्व के कारण हफ्तेभर तक क्षेत्र में उल्लास छाया रहता है। पर्व मनाने के लिए पलायन स्थलों से भी ग्रामीण बड़ी संख्या में अपने गांव लौटेंगे। लगभग चार दर्जन स्थानों पर भगोरिया मेला लगेगा, जिस दिन का संस्कृति प्रेमी बेसब्री से इंतजार करते है, वह पर्व अब त्योहारिया हाट से प्रारंभ होगा। इसमें मस्ती व उल्लास रहेगा, तो आदिवासी संस्कृति की झलक भी नजर आएगी। पेट की आग बुझाने के लिए क्षेत्र की 70 प्रतिशत जनता पलायन करती है। रोजगार की तलाश में दूर-दूर तक जाने वाले ग्रामीण जहां कहीं भी होंगे, भगोरिया की महक उन्हें अपने गांव लौटने के लिए वापस मजबूर करेगी। वार्षिक मेले भगोरिया की प्रमुख विशेषता यह है कि 7 दिनों तक लगातार यह चलता है। हर दिन कहीं न कहीं भगोरिया मेला रहता है। इन मेलों में गांव के गांव उमड़ पड़ते है। छोटे बच्चे से लेकर वृद्ध तक अनिवार्य रूप से इसमें सहभागिता करते है। ढोल, मांदल, बांसुरी जैसे वाद्य यंत्रों की मीठी ध्वनि और लोक संगीत के बीच जब सामूहिक नृत्य का दौर भगोरिया मेले में चलता है, तो चारों ओर उल्लास ही उल्लास बिखर जाता है। साथ ही होती है झूला-चकरी की मस्ती व पान तथा अन्य व्यंजनों की भरमार। चाहे जितने जीवन में संघर्ष हो, लेकिन सब कुछ भूलकर हर ग्रामीण भगोरिया की मस्ती में डूबा दिखाई पड़ता है।

रियासत काल से चल रहा है त्योहार

रियासत काल से चल रही धुलेंडी के सात दिन पहले से यह पर्व आरंभ हो जाता है। रियासत काल से ही यह पारंपारिक त्योहार यहां चल रहा है। पर्व को लेकर अलग-अलग इतिहास भी बताया जाता है। कुछ इतिहासकार कहते हैं कि ग्राम भगोर से यह पर्व आरंभ हुआ, इसलिए इसका नाम भगोरिया पड़ गया। कुछ लोगों का मानना है कि होली के पूर्व लगने वाले हाटों को गुलालिया हाट कहा जाता था। इसमें खूब गुलाल उड़ती थी। बाद में होली के पूर्व मनाए जाने वाले इन साप्ताहिक हाटों को भगोरिया कहा जाने लगा। मान्यता चाहे जो हो, लेकिन मैदानी हकीकत यह है कि यह वार्षिक पर्व अपनी संस्कृति की सुगंध हमेशा से चारों ओर बिखेर रहा है।

अनोखी परंपरा
फामादीहाना : मौत के पार रिश्तों का उत्सव

दुनिया में कुछ परंपराएं ऐसी होती हैं, जो पहली नजर में हैरान करती हैं, लेकिन गहराई से समझने पर इंसानी संवेदनाओं और रिश्तों की नई परतें खोलती हैं। ऐसी ही एक अनोखी परंपरा अफ्रीकी द्वीपीय देश मेडागास्कर में देखने को मिलती है, जहां लोग अपने गुजरे हुए अपनों को याद करने के लिए कब्र से बाहर लाते हैं और उनके साथ नाचते-गाते हैं। यहां मृत्यु को अंतिम विदाई नहीं, बल्कि दोबारा मिलन का अवसर माना जाता है। मेडागास्कर के मालगासी समुदाय में निभाई जाने वाली इस परंपरा को फामादीहाना कहा जाता है, जिसका अर्थ है-"हड्डियों को पलटना।" यह रस्म हर पांच से सात साल में आयोजित की जाती है। इस दौरान परिवार के लोग अपने पूर्वजों की कब्रें खोलते हैं, उनके अवशेषों को बाहर निकालकर नए, सुंदर रेशमी कफनों में लपेटते हैं और फिर संगीत, ढोल-नगाड़ों और गीतों के साथ नृत्य करते हैं। यह दृश्य किसी शोक समारोह से अधिक एक उत्सव जैसा लगता है।

मालगासी समाज में यह विश्वास गहराई से रचा-बसा है कि मृत्यु के बाद भी आत्माएं पूरी तरह विदा नहीं होतीं। माना जाता है कि पूर्वजों की आत्माएं आसपास ही रहती हैं और समय-समय पर अपने परिजनों का हाल जानने धरती पर लौटती हैं। फामादीहाना उन्हीं आत्माओं के सम्मान, उनसे संवाद और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का अवसर है। इस रस्म के दौरान लोग अपने दिवंगत प्रियजनों से बातें करते हैं, उन्हें परिवार की नई पीढ़ी से परिचित कराते हैं और जीवन की घटनाएं साझा करते हैं। फामादीहाना के समय कब्रिस्तान का माहौल बिल्कुल बदल जाता है। वहां ढोल बजते हैं, लोग पारंपरिक परिधान पहनकर नृत्य करते हैं, सामूहिक भोज पकता है और पूरे इलाके में उत्सव का रंग बिखर जाता है। बाहरी दुनिया से आने वाले पर्यटकों के लिए यह दृश्य चौंकाने वाला और असामान्य हो सकता है, लेकिन स्थानीय लोगों के लिए यह बेहद पवित्र और भावनात्मक अनुभव होता है। यहां तक कि उंगली से इशारा करना भी वर्जित माना जाता है, क्योंकि ऐसा करने से आत्माओं के नाराज होने की मान्यता है। पहली नजर में फामादीहाना डरावनी या रहस्यमयी लग सकती है, लेकिन मालगासी लोगों के लिए यह मौत का उत्सव नहीं, बल्कि यादों, सम्मान और प्रेम का प्रतीक है। शायद यही कारण है कि सदियों से चली आ रही यह परंपरा आज भी जीवित है और यह हमें यह सोचने पर मजबूर करती है कि दुनिया में रिश्तों को देखने और निभाने के कितने अलग-अलग तरीके हो सकते हैं।

आर्ट गैलरी
राफेल की 'द ट्रांसफिगरेशन'

द ट्रांसफिगरेशन नाम का आर्टवर्क मशहूर रेनेसां आर्टिस्ट राफेल का एक मास्टरपीस है, जिसे साल 1520 में पूरा किया गया था। पैनल पर बनी यह ऑयल पेंटिंग हाई रेनेसां आर्टिस्ट्री का एक बेहतरीन उदाहरण है, जो अपने धार्मिक जॉनर के लिए जानी जाती है। आर्टवर्क में, देखने वाले को एक ज़बरदस्त चित्रण देखने को मिलता है, जिसमें एक्सप्रेसिव फिगर्स की भीड़ है, जो एक साफ ड्रामैटिक इंटेंसिटी में लिपटी हुई है। इन फिगर्स को इमोशन की एक जबरदस्त गहराई के साथ दिखाया गया है, जिसमें गहरी भक्ति से लेकर डरावने अविश्वास तक शामिल हैं। कंपोजिशन में कई दिव्य और इंसानी कैरेक्टर्स हैं, जो डायनैमिक रूप से बातचीत करते हैं।

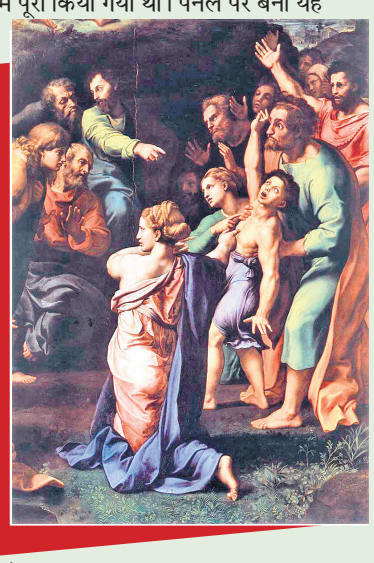

राफेल पेंट की गई फिगर्स में थ्री-डायमेंशनल क्वालिटी लाने के लिए काइरोस्कोरो का इस्तेमाल करते हैं, जिससे उनकी असली जैसी मौजूदगी और बढ़ जाती है। कलर पैलेट में रिच टोन भरे हुए हैं, जो कपड़ों की ड्रेपरी और फिगर्स के शरीर को बहुत बारीकी से दिखाते हैं और सीन की कहानी कहने की ताकत पर ज़ोर देते हैं।

राफेल के बारे में

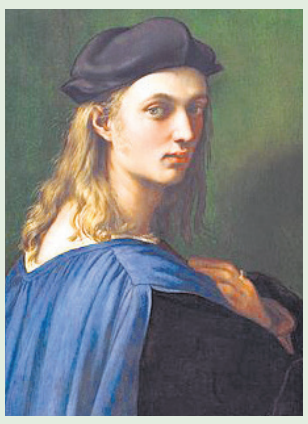

राफेल सैंजियो दा अर्बिनो, जिन्हें राफेल के नाम से बेहतर जाना जाता है, हाई रेनेसां कॉल के सबसे महान पेंटर्स में से एक थे। उनका जन्म 1483 में इटली में एक आर्टिस्ट परिवार में हुआ था और उन्होंने पेंटिंग के लिए शुरू से ही टैलेंट दिखाया और जल्द ही एक जाने-माने आर्टिस्ट बन गए। यह वह समय था जब पूरे यूरोप में आर्ट फल-फूल रहा था। इसकी पहचान क्लासिकल एंटीक्विटी और ह्यूमनिज्म में दिलचस्पी थी, जिससे पर्सपेक्टिव और काइरोस्कोरो जैसी पेंटिंग टेक्नीक में नए डेवलपमेंट हुए। इस दौरान, लियोनार्डो दा विंची और माइकल एंजेलो बुओनारोती जैसे कई महान आर्टिस्ट उभरे। राफेल के काम में लियोनार्डो दा विंची और माइकल एंजेलो जैसे उनके कंटेंपरेरी लोगों के साथ-साथ पेरुगिनो जैसे पहले के मास्टर्स का भी असर दिखता है, जिन्होंने उन्हें उनकी अप्रेंटिसशिप के दौरान सिखाया था। उन्होंने उनकी स्टाइल को अपने यूनिक विजन के साथ मिलाया, जिससे ऐसी पेंटिंग्स बनीं, जो टेक्निकली परफेक्ट और इमोशनली एक्सप्रेसिव दोनों थीं।

लोकायन

हमारा देश वसुधैव कुटुंबकम् की अवधारणा का देश है। यहां सभी धर्म के त्योहार धूमधाम व सामूहिक रूप से मनाए जाते हैं। इसी प्रकार देश के कुछ प्रदेशों में तिब्बती नव वर्ष लोसार भी पूरे उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। भारत में अंग्रेजी नव वर्ष मनाना तो आम बात है, लेकिन बहुत कम लोग जानते हैं कि हमारे देश में तिब्बती नव वर्ष लोसार भी व्यापक स्तर पर मनाया जाता है। लोसर 18 फरवरी से मनाया जाएगा और इसका मुख्य उत्सव आमतौर पर तीन दिनों तक चलता है, लेकिन यह त्योहार 15 दिनों तक मनाया जाता है।

परंपरा और उत्सव का संगम तिब्बती नव वर्ष लोसार

क्या है लोसार उत्सव : 'लोसार' दो तिब्बती शब्दों से मिलकर बना है, जिसमें 'लो' का अर्थ 'नया' और 'सर' का अर्थ 'वर्ष' होता है। इस प्रकार इसका सामूहिक अर्थ 'नया साल' है। लोसार तिब्बत, नेपाल और भूटान का सबसे महत्वपूर्ण बौद्ध त्योहार माना जाता है। भारत में यह मुख्य रूप से सिक्किम, लद्दाख और अरुणाचल प्रदेश में तिब्बती समुदायों और स्थानीय जनजातियों द्वारा मनाया जाता है। यह उत्सव जीवन के नवीनीकरण, समृद्धि और आध्यात्मिक शुद्धि का प्रतीक है।

सांस्कृतिक महत्व : हालांकि लोसार को 'तिब्बती नव वर्ष' कहा जाता है, लेकिन इसकी जड़ें बौद्ध धर्म के आगमन से भी पहले की हैं। यह मूल रूप से 'बोन' परंपरा का हिस्सा था, जिसमें लोग सर्दियों के अंत में प्रकृति के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए पूजा करते थे। बाद में जब बौद्ध धर्म तिब्बत की मुख्य धारा बना, तो यह उत्सव आध्यात्मिक और धार्मिक रंगों में रंग गया। लोसार का मुख्य उत्सव आमतौर पर तीन दिनों तक चलता है, जबकि समूचा पर्व लगभग 15 दिनों तक मनाया जाता है। लोसार में साफ-सफाई को विशेष महत्व दिया जाता है। इसका पहला दिन 'लामा लोसार' कहलाता है, जिसमें घरों की पुताई और गहन सफाई की जाती है। पुरानी और अनुपयोगी वस्तुओं को हटाया जाता है। मान्यता है कि इससे घर में स्वास्थ्य, शांति और समृद्धि का वास होता है। इस अवसर पर घरों की सजावट की जाती है और नई प्रार्थना-पताकाएं लगाई जाती हैं।

तीन दिनों तक चलते हैं कार्यक्रम : लोसार उत्सव के पहले दिन सूर्योदय से पूर्व ही मठों में शंखनाद गूंजने लगता है। लोग अपने गुरुओं से आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। तिब्बती और लद्दाखी परिवार घरों में धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, जिनमें दीप प्रज्वलन और बौद्ध मंत्रों का पाठ शामिल होता है। इस दिन तिब्बती लामा और उच्च गुरुओं की दीर्घायु के लिए विशेष प्रार्थनाएं की जाती हैं। दूसरा दिन 'ग्यालपो लोसार' अर्थात 'राजाओं का दिन' कहलाता है। यह दिन सामुदायिक मेल-मिलाप का प्रतीक होता है। ऐतिहासिक रूप से यह शासकों और उनके मंत्रियों के बीच संवाद का दिन रहा है। आज यह सार्वजनिक समारोहों, नृत्य-गीत और मेलों के रूप में मनाया जाता है। लद्दाख और धर्मशाला की सड़कों पर पारंपरिक परिधानों में सजे लोग एक-दूसरे को 'ताशी देलेक' कहकर नव वर्ष की शुभकामनाएं देते हैं।

तीसरा दिन 'चो-क्योंग लोसार' यानी 'धर्म रक्षकों का दिन' होता है। इस दिन लोग पहाड़ियों और पर्वत चोटियों पर जाकर धूप (सांग) जलाते हैं और प्रार्थना-पताकाएं (लुंगटा) फहराते हैं। ये पताकाएं शांति, करुणा और सकारात्मक ऊर्जा का प्रतीक मानी जाती हैं। **मुखौटा नृत्य (छम) :** लोसार उत्सव का सबसे आकर्षक और रोमांचक पक्ष मठों में होने वाला 'छम' या मुखौटा नृत्य है। यह नृत्य बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतीक होता है। रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्रों और भव्य मुखौटों में सजे लामा जब नृत्य करते हैं, तो दर्शकों को एक अलग ही आध्यात्मिक संसार का अनुभव होता है।

मिस्र में मिले शैलचित्र का भारतीय संदर्भ में महत्व

मिस्र के दक्षिणी सिनाई स्थित उम्म अरक पठार पर लगभग 10,000 वर्ष पुराने शैलचित्रों की खोज ने प्रागैतिहासिक कला के वैश्विक इतिहास को नए सिरे से देखने का अवसर दिया है। देखा जाए तो यह हालिया पुरातात्विक खोज केवल मिस्र की सांस्कृतिक धरोहर का विस्तार नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के आरंभिक कलात्मक बोध की एक साझा विरासत की ओर संकेत करती है। भारतीय संदर्भ में देखें तो यह खोज विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो उठती है, क्योंकि भारत में भी शैलकला की समृद्ध और प्राचीन परंपरा विद्यमान है।

सुमन कुमार सिंह
कलाकार/कला लेखक

भारत में मध्य प्रदेश के भीमबेटका शैलाश्रय विश्वप्रसिद्ध प्रागैतिहासिक शैलचित्रों का केंद्र है, जिन्हें यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर का दर्जा प्राप्त है। भीमबेटका की गुफाओं में मानव आकृतियां, शिकार के दृश्य, पशु-पक्षियों की छवियां और सामुदायिक जीवन के संकेत मिलते हैं। आश्चर्यजनक रूप से उम्म अरक के शैलचित्रों में भी समान प्रकार की विषयवस्तु- शिकार, पशु आकृतियां और प्रतीकात्मक चिह्न दिखाई देते हैं। यह समानता इस तथ्य को रेखांकित करती है कि भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहते हुए भी प्रारंभिक मानव समुदायों की संवेदनाएं और अभिव्यक्तियां कहीं न कहीं एक-दूसरे से जुड़ी हुई थीं।

उम्म अरक के चित्रों में जंगली पशुओं और मानव समूहों के दृश्य उस समय की पर्यावरणीय और सामाजिक संरचना का संकेत देते हैं। इसी प्रकार भीमबेटका तथा भारत के अन्य शैलचित्र स्थलों में भी सामुदायिक गतिविधियों, अनुष्ठानों और प्रकृति से गहरे संबंध का बोध मिलता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शैलकला केवल सौंदर्यबोध की अभिव्यक्ति नहीं थी, बल्कि यह जीवनयापन, आस्था और सामाजिक संगठन का दस्तावेज भी थी। भारतीय परिप्रेक्ष्य में शैलचित्रों को केवल 'कला' के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति के रूप में भी देखा जाता है। वे उस समय के मनुष्य के मानस, उसकी आशंकाओं, आकांक्षाओं और आध्यात्मिक अनुभवों का दृश्य लेखा हैं। मिस्र के उम्म अरक की खोज इस वैश्विक मान्यता को पुष्ट करती है कि मानव रचनात्मकता की जड़ें अत्यंत प्राचीन और सार्वभौमिक हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण बिंदु जलवायु और पर्यावरणीय परिवर्तन का है। उम्म अरक के चित्र संकेत देते हैं कि दक्षिणी सिनाई क्षेत्र कभी अधिक हरित और जीवनोपयोगी रहा होगा। इसी प्रकार भारत के कई शैलचित्र स्थल भी ऐसे क्षेत्रों में स्थित हैं, जहां आज का पर्यावरण अतीत की तुलना में बिल्कुल भिन्न है। इस प्रकार शैलचित्र केवल कला-इतिहास नहीं, बल्कि पर्यावरणीय इतिहास के अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

भारतीय कला-दर्शन की दृष्टि से यदि देखें तो 'मंडल', 'चक्र' और 'सृष्टि-चेतना' जैसे प्रतीक, जो बाद की सभ्यताओं में विकसित हुए, उनकी आदिम जड़ें भी संभवतः इन्हीं प्रारंभिक प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों में निहित रही होंगी। दरअसल शैलचित्रों की वृत्तात्मक रचनाएं और समूह-आकृतियां सामूहिकता और ब्रह्मांडीय व्यवस्था की प्रारंभिक समझ का संकेत देती हैं। उम्म अरक की यह खोज भारत सहित विश्व के अन्य प्रागैतिहासिक स्थलों के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता को भी रेखांकित करती है। इससे यह समझ विकसित होती है कि मानव सभ्यता का विकास किसी एक भूभाग की कहानी नहीं, बल्कि एक साझा मानवीय यात्रा है।

अतः मिस्र के दक्षिणी सिनाई में मिले ये 10,000 वर्ष पुराने शैलचित्र भारतीय शैलकला की परंपरा के साथ संवाद स्थापित करते हैं। हमें यह स्मरण कराते हैं कि मानवता की सांस्कृतिक स्मृति सीमाओं से परे हैं। ऐसे में चाहे वह सिनाई का पठार हो या भीमबेटका की गुफाएं, कला मनुष्य की सार्वभौमिक भाषा रही है, जो समय, भूगोल और संस्कृतियों को जोड़ती है।